International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 29-05-2022, Accepted: 15-06-2022, Published: 01-07-2022
Volume 8, Issue 4, 2022, Page No. 1-3

लोक साहित्य एवं वैज्ञानिकताः एक अनुशीलन

राजेश कुमार वर्मा[1], रेखा पाण्डेय[2]
[1] शोधार्थी (हिन्दी), मध्यांचल प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, भोपाल, मध्य प्रदेश, भारत
[2] सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), मध्यांचल प्रोफेशनल युनिवर्सिटी, भोपाल, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
भारतीय साहित्य में समग्र के रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग समाज के उस मानव समूह हेतु किया जाता है जो वास्तव में बाह्य दिखावा, शिक्षा और सभ्यता इत्यादि से सुदूर आदिम युग की मनोवृत्तियों से युक्त होता है। इस तरह सभ्यता के वैदिक काल से वर्तमान तक लोक शब्द का प्रचलन मुख्यतः समान अर्थों में सतत् रूप में प्राप्त होता है। लेकिन यहां प्रमुख रूप से दृष्टव्य यह है कि लोक शब्द का प्रयोग लोक संग्रह अथवा लोक कल्याण के सन्दर्भों में किया गया है। साहित्य के क्षेत्र में साहित्य शब्द के पहले लोक अभिधान लगाने के पश्चात् उसका तात्पर्य होता है– लोक का साहित्य। यहाँ पर लोक शब्द का आशय जन–मानस सम्प्रदाय/समूह द्वारा लिया जाता है। अतः लोक साहित्य का ज्ञान ऐसे साहित्य से होता है जिसकी सारगर्भित रचना जनता–जनार्दन के माध्यम से की जाती है। लोक साहित्य का संबंध समाज–विज्ञानों में अत्यन्त ही घनिष्ठ है। मानव समुदाय का अध्ययन करने वाले सम्पूर्ण समाज–विज्ञानों के अध्ययन की व्यापक स्तर पर सामग्री लोक साहित्य में उपलब्ध हो जाती है। इस दृष्टि से लोक–साहित्य एवं समाज–विज्ञानों का आपसी संबंध अत्यन्त ही प्रगाढ़ माना जाता है। अतः कुछ शास्त्रों, कलाओं अथवा समाज–विज्ञानों से लोक साहित्य एवं वैज्ञानिकता का जिक्र यहां किया गया है।

मूल शब्दः लोक साहित्य, वैज्ञानिकता, समाज, जनमानस

प्रस्तावना
साहित्य के क्षेत्र में 'लोक' शब्द अत्यन्त ही प्राचीन समय से प्रयोग में आता रहा है। साहित्य जगत में 'लोक' शब्द की उत्पत्ति हुई है। इसलिये 'लोक' शब्छ का आशय 'देखने वाला' होगा, लेकिन आम दृष्टि में इसका प्रयोग 'समस्त जनमानस' हेतु किया जाता है। भारतीय ऋग्यवेद में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'जन' के विलोम शब्द के रूप में किया गया है। इसी प्रकार पुरूष सूक्त में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'स्थान' व 'जीव' शब्दों के अर्थ को अभिव्यक्त करने हेतु किया गया है। प्रसिद्ध वेद अथर्ववेद में 'लोक' शब्द से दो लोकों की स्थिति का ज्ञान कराया गया है, जो 'पार्थिव' व 'दिव्य' के रूप में बतलाये गये हैं। इसी तरह पाणिनि, वररूचि एवं पतंजलि प्रभृत्ति वैयाकरणों ने भी 'लोक' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग यथार्थ रूप में किया गया है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में स्वयं लिखा है कि इस शास्त्र की रचना लोक मनोरंजन की दृष्टि से की जा रही है। साहित्य जगत में 'लोक' शब्द की उत्पत्ति का आशय है– 'देखने वाला'। जबकि भारतीय साहित्य के शब्द कोष में 'लोक' शब्द के सात आशय– स्थान बोध, संसार, प्रदेश/क्षेत्र, जन/लोग, समाज, प्राणी एवं यश प्रचलित मिलते हैं। वास्तव में सम्पूर्ण रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग उस जनमानस के समूह हेतु किया जाता है, जो बाह्य दिखावा, सभ्यता, शिक्षा व साज–सज्जा इत्यादि से सुदूर आदिम मनोवृत्तियों से संलिप्त होता है। इस तरह वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक 'लोक' शब्द का प्रयोग स्वभावतः समान अर्थों में निरन्तर रूप से देखने को मिलता रहा है। इस संदर्भ में यह स्पष्ट होता है कि 'लोक' शब्द का प्रयोग 'लोक संग्रह' अथवा 'लोक कल्याण' के संदर्भों में किया जाता है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए परवर्ती संस्कृत साहित्य की भाषा को 'लौकिक संस्कृत' के रूप में स्वीकार किया गया है, दृष्ट्व्य यह है कि संस्कृत साहित्य में 'लोक' शब्छ का प्रयोग 'जन–कल्याण' के भाव से किया गया है। इसी भाव से हिन्दी साहित्य में भी परम्परागत रूप में 'सामान्य जनमानस' के भाव के रूप में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया जाता है। दृष्टव्य यह है कि हिन्दी साहित्य के अनुसंधानकर्ताओं ने अपने शोध कार्यों/प्रबन्धों में यह पूर्णतः प्रमाणित किया है कि हिन्दी साहित्य में वीरगाथा काल के समय से ही इस शब्द के प्रयोग के साक्ष्य मिलते हैं। इतना ही नहीं गोस्वामी तुलसीदास ने 'लोक' शब्द का प्रयोग हमेशा सार्थक रूप में किया है। भारत के बहुचर्चित ग्रंथ रामचरित मानस में भी 'लोक' एवं 'वेद' शब्दों का प्रयोग हमेशा सार्थक स्वरूप में ही किया गया है। [2], इसी भाव को दृष्टव्य रखते हुए रामचरितमानस में 'लोक' एवं 'वेद' शब्दों का प्रयोग साभिप्राय स्वरूप में करके प्रकाण्ड महाकवि तुलसीदास ने लोक की सप्ता को स्वतंत्र रूप में स्थापित करते हुए कहा है कि–

'लोकहु' वेद सुसहिब रीति।
विनय सुनत पहिचानत प्रीती।।
भरत विनय सादर सुनिहु करेह विचारि बहोरि।
करब साधुमत 'लोकमत' नृपनय निगम निचोरि।।

तदैव हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध समीक्षक नाम के धनी कवि पं. रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'लोक–मंगल' एवं 'लोक–रंजन' को भी श्रेष्ठ काव्य की वास्तविक कसौटी पर परखते हुए 'लोक' शब्द का प्रयोग अनेकों बार किया है। इतना ही नहीं, लोक साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने भी 'लोक' शब्द के अर्थ को सुस्पष्ट करते हुए अपने शब्दों में कहा है कि जो लोग संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित होकर अपनी पुरातन दशाों में ही रहते हैं, वे 'लोक' कहे जा सकते हैं। वास्तव में यह शब्द अर्थात् 'लोक' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'फोक' शब्द का हिन्दी अवतरण है, अंग्रेजी शब्द के इस शब्द 'फोक' का प्रयोग अर्द्धशिक्षित, अशिक्षित, अर्थसभ्य एवं असभ्य वर्ग के लोगों हेतु किया जाता है। इसलिए विद्वान वर्ग के लोग 'लोक' शब्द का प्रयोग सामान्य ग्रामीणों हेतु करते हैं, जो साधारण रूप से 'लोक' शब्द एवं ग्रामीणों दोनों के प्रति काफी अन्याय करते हैं, इस दृष्टि से निष्कर्ष स्वरूप में सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के वक्तव्य को 'लोक' शब्द के अर्थ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है कि–

''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, अपितु
नगरों एवं ग्रामों में फैली हुई वह सम्पूर्ण जन–मानस हैं,
जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां कदापि नहीं हैं।''

आज भी हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वान 'लोक' शब्द को 'लोक' के अर्थ में प्रयोग करते हैं, जो प्रायः 'लोक' एवं 'जन' को एक–दूसरे का विलोम मानते हैं और अपने अभिमत को पुष करने हेतु अन्यत्र दिये हुए व शब्दकोषों में उल्लेखित 'लोक' शब्द के अनेक अर्थों में 'जन' अर्थ को उद्धृत करते हैं। साक्ष्य के तौर में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने लेखन में 'जन' शब्द का प्रयोग ग्राम्य के अर्थ में किया है। जबकि डॉ. सत्येन्द्र ने 'लोक' शब्द को 'व्यापक' व 'जन' शब्द को संकीर्णता का संकेतक माना है। इतना ही नहीं, डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय ने अपने शोध कार्य 'कुमायुंनी जन साहित्य का अध्ययन' में 'लोक' शब्द को भ्रामक रूप में बतलाते हुए 'जन' शब्द के प्रयोग को ही उचित बतलाते हैं। साहित्यकारों व समीक्षकों की दृष्टि से डॉ. पाण्डेय 'लोक' शब्द के सतही आशय तक ही सीमित रह गये हैं, यदि 'लोक' शब्द के आशय को व्यापक रूप में विश्लेषित किया जाय तो यह सुस्पष्ट होगा कि 'लोक' शब्द मानव समाज की सूक्ष्मतम दशा अर्थात् उसके अमूर्त भाव द्योतक है, जबकि मानव समाज की दृष्टि से 'जन' शब्द अपने आशय में स्थूलता का वाधक है तथा जन मानस के अत्यधिक सन्निकट है। इसलिए 'जन' शब्द को 'जन–मानस/जनता' शब्द के साथ जोड़ा जा सकता है, लेकिन इस संदर्भ में यह तथ्य भी दृष्ट्व्य है कि 'जनपद' शब्द का उपयोग हमारे समाज के प्राचीनतम ग्रंथों में उपलब्ध होता है तथा उसका उपयोग अत्यधिक किया गया है। रामायण में रामराज्य के वर्णन में उसका उपयोग 'जनपद' के रूप में किया गया है, इतना ही नहीं, महाभारत में भी इसका प्रयोग 'जनपद' के रूप में भी किया गया है। अतः उपरोक्त के आधार पर 'जन' शब्द की प्राचीनतमा व उसकी सार्थकता पर प्रश्न–चिन्ह लगाने का कोई प्रश्न ही कदापि उत्पन्न नहीं होता है। वास्तव में परवर्ती संस्कृत एवं पाली के साहित्यिक ग्रंथों में 'जन' शब्द का उपयोग 'मानव–समाज' के आशय के रूप में किया गया है, जबकि वर्तमान राजनीतिक वातावरण को शब्दावली में 'जनता' के आशय को 'जन' शब्द के रूप में प्रयोग किया गया है। इस संदर्भ में 'जन' व 'लोक' शब्द प्रायः समानार्थी प्रतीत होते हैं, उक्त दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि 'जन' मूर्त स्वरूप को प्रतीक करता है और 'लोक' शब्द का अमूर्त भाव को बतलाता है ख4,। अतएव उपराक्त विश्लेषण/विवरण से इस निष्कर्ष का बोध होता है कि 'लोक' वास्तव में अंग्रेजी भाषा के 'फोक' शब्द का हिन्दी अवतरण माना जा सकता है और लोक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में 'लोक' शब्द का उपयोग ही सभी दृष्टियों व पक्षों से उचित है। वर्तमान समाज में लोक साहित्य को जन साहित्य कहना एक नवीन दृष्टिकोण से नये विवाद व भ्रांतियों को जन्म देने के समान है। भारतीय साहित्य के क्षेत्र में दो शब्द 'विष्ट साहित्य' व 'लोक साहित्य' काफी प्रचलित है। जिसमें से लोक साहित्य को लोक संस्कृति का एक काफी महत्वपूर्ण अंग माना जाता है और लोककथाएं, लोकगीत, लोकनाट्य, लोकगाथाएं, कथागीत, नौटंकी, धर्मगथाएं एवं रामलीला इत्यादि लोक साहित्य से सम्बद्ध प्रमुख विषय हैं। जबकि शिष्ट साहित्य अनिवार्य रूप से एकलिखित साहित्य होता है, जबकि लोक साहित्य अलिखित व लिखित द्वय रूपों में जन–मानस के बीच उपलब्ध होता है। आम दृष्टिकोण से वैसे तो लोक साहित्य प्रायः मौखिक स्वरूप में ही रहा है और वह मौखिक परम्परा की धारणा के अनुसार ही निरन्तर चलता रहता है। लेकिन आज शिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार व छपाई के कारण लोक साहित्य के रूप में अत्यधिक बदलाव आया है, आज का प्रत्येक लोक कवि जो भी नवीन साहित्यों की रचना कर रहा है वह सभी लिपिबद्ध या लिखित रूप में होता है। इसके अलावा लोक साहित्य के संकलन व संग्रहण एवं शोध कार्य में विस्तार तथा प्रगति होने के परिणामस्वरूप अनेकों लोक साहित्य लिपिबद्ध किये जा रहे हैं और उन्हें ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। 'साहित्य' शब्द के पहले 'लोक' अभिधान लगाने के पश्चात् उसका आशय यह है कि लोक का साहित्य। जिसमें 'लोक' शब्द का अर्थ जनता–जनार्दन द्वारा लिया जाता है, अतः लोक साहित्य का बोध एक ऐसे साहित्य से होता है, जिसकी रचना वास्तव में जनता–जनार्दन द्वारा की जाती हो। एक विशेष व्यक्ति की रचना न होने का आशय यही हो सकता है कि जिस साहित्य की रचना एक जन–समूह के माध्यम से की गयी हो, उसे साहित्य के क्षेत्र में लोक साहित्य कहा जाना चाहिए। जन–मानस की जो भावनायें– प्रेम, शोक, हर्ष, विषाद एवं भय इत्यादि होती है उनकी सामूहिक अभिव्यक्ति गीत, कथा इत्यादि के रूप में हुई होगी। किसी एक कवि/व्यक्ति ने एक पंक्ति की मौखिक रचना की होगी, तो दूसरे व्यक्ति ने उसमें कए और पंक्ति जोड़ दी और उसमें तीसरे व्यक्ति ने तीसरी पंक्ति को रचकर गीत को आगे की ओर अग्रसर किया होगा। [6], इसी प्रकार परवर्ती पीढ़ि दर पीढ़ि ने इस गीत में संशोधन, परिवर्द्धन किये होंगे तथा इस तरह विभिन्न लोगों/विद्वानों/कवियों ने अपनी रचना सहयोग से जो साहित्य को रचकर समाज के समाने प्रकाश में लाया, वही आज 'लोक साहित्य' की श्रेणी के रूप में समाज के सामने उभरकर आ गया है। इस संबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि ''ऐसा माना जा सकता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न्न होकरर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित एवं प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य, लोक शिल्प, लोक नाट्य व लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती है। अतः यह ध्यान केन्द्रित करने योग्य तथ्य है कि आचार्य द्विवेदी ने 'लोकचित' शब्द का उपयोग किया है, यहां पर इस शब्द का आशय परम्परा प्रस्थित एवं बौद्धिक विवेचनापरक शास्त्रों एवं

अन्य टीका–टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित जन–शक्ति या बुद्धि प्रखरता से है। आधुनिक समय में वैज्ञानिकता व आदिम युग की परिस्थितियों में काफी अन्तर है। वैज्ञानिकता के इस दौर में साहित्य के अंतर्गत स्वास्थ्य विज्ञान, कृषि विज्ञान एवं ऋतु विज्ञान इत्यादि से संबंधित साहित्यों को भी इसमें सम्मिलित किया जाने लगा है। लोक जीवन में ऐसे साहित्यों का आधुनिक वैज्ञानिक समय में काफी महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें पूर्व के कवियों/साहित्यकारों द्वारा निर्धारित नियमों, अनुभूतियों तथा इनसे संबंधित उपदेश युक्त तथ्यों को सम्मिलित किया गया है, जो मुख्य रूप से परीक्षा की कसौटी पर खड़ा उतरती है, लेकिन इनके साथ इसके कुछ अपवाद देखने को मिलते हैं। ऋतु विज्ञान के तहत अल्प दृष्टि, अति वृष्टि एवं अनावृष्टि के कारणों तथा उनसे होने वाली हॉनियों और उनसे बचने से संबंधित उपायों की ओर संकेत किये गये हैं। ऐसे वैज्ञानिकता के युग में साहित्य के आधार पर परम्परागत अनुभव ही होते हैं। वास्तव में वह अनुभव अत्यंत ही निश्चिय होते हैं। इसलिए लोक साहित्यों की तरह इनके बनने व बिगड़ने की संभावनाएं बहुत ही कम होती है। यही दशा कृषि विज्ञान हेतु रचे गये साहित्य में की गयी है जिसमें खेती से संबंधित प्रायः सभी आवश्यक बातें कह दी गयी हैं अर्थात् खेती की जुताई कैसे हो, किस तरह के खेत में किस प्रकार की बुआई की जाये। बीज कितनी मात्रा में प्रयोग किया जाय और सिंचाई किस समय पर की जाय इत्यादि का उल्लेख इसमें की गयी है।

उपसंहार

अतः लोक साहित्य पर वैज्ञानिकता का व्यापक प्रभाव पड़ा है। आदिकाल में लोक साहित्यों का वर्णन लिपिबद्ध कम और जनमानस के बीच अधिक प्रसारित रहा, लेकिन आज वैज्ञानिकता के युग में शिक्षा की व्यापक प्रचार–प्रसार के कारण रचित लोक साहित्यों को नवीन तकनीकों के माध्यम से लिपिबद्ध किया जा रहा है ताकि भविष्य में आने वाली पीढ़ी हेतु इसे संरक्षित रखा जा सके।

संदर्भ सूची

1. डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय – लोक साहित्य का अध्ययन, वर्ष 2008
2. डॉ. सतेन्द्र – लोक साहित्य का विज्ञान, वर्ष 2005
3. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य भूमिका, वर्ष 1993
4. जगदीश चन्द्र माथुर – लोक रंगमंच का रूप और संगठन, वर्ष 1992
5. कन्हैयालाल सहल – लोक साहित्य का महत्व, वर्ष 1995
6. अमर बहादुर – लोक साहित्य और जीवन सन्देश, वर्ष 2001